ISSN: 3107-3557 (Online)

मानवजीवन में गुरु माहात्म्य : तुलसीदास की दृष्टि में

Mr.Shivam K.Dave
Lecturer in Sanskrit
Smt. B. V. Dhanak College, Bagasara

'गुरु' शब्द का प्रयोग भारतीय संस्कृति में बहुत महत्त्वपूर्ण है । खासकर हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म में इस शब्द का अनेक बार उल्लेख प्राप्त होता है । 'गुरु' शब्द जिसका का अर्थ ज्ञान देनेवाला, मार्गदर्शक या शिक्षक होता है । गुरु का कार्य अंधकार से प्रकाश की तरफ ले जाना होता है जो हमारे अंदर अज्ञानता को दूर करके प्रकाश की और ले जाने वाले बताया गया हैं। 'गुरु' शब्द संस्कृत भाषा से आया है । 'गुरु' शब्द 'गृ' धातु जिसका अर्थ 'ग्रहण करना या लेना । 'गुरु' उकारान्त पुल्लिंग संज्ञा शब्द है । 'गुरु' शब्द का अर्थ संज्ञा पुं. [सं॰ गुरु] अध्यापक प्राप्त होता है।[1]

'गुरु' का मनुष्य के जीवन में सबसे अधिक महत्त्व होता है क्योंकि वह ज्ञान, मार्गदर्शन और प्रेरणा का स्रोत होता है । मनुष्य का सबसे प्रथम गुरु उसकी माँ होती है दूसरा उसके पिता उसके पश्चात कोई ना कोई ज्ञान, बात, अनुभव जैसे-जैसे हम जीवन में सिखते हैं उसी प्रकार हमारे गुरु बनते जाते हैं । इस परिप्रेक्ष्य में यह बताना निन्तांत आवश्यक बन जाता है कि हमारे शास्त्रों में गुरु की महिमा के साथ उसके प्रकार भी बताएँ हैं । मैंने यहाँ पर श्रीरामचरितमानस में 'गुरु' शब्द का उल्लेख जिस-जिस स्थान पर मिलता है, यह दर्शाने का एक यथा-संभव प्रयास किया है ।

भारतीय साहित्य में गुरु को एक ऐसी कड़ी के रूप में दर्शाया गया है, जो भौतिक जगत और परमात्मा के बीच एक तादात्म्य स्थापित करता है । मनुष्य के जन्मदाता बेशक माता-पिता ही होते हैं, परन्तु उसको उचित जीवन जीने की राह गुरु ज्ञान से ही प्राप्त होती है । गुरु ही मनुष्य को परमतत्त्व तक ले जाने का कार्य करतेहैं । वही इस जीवन के जन्म से छुटकारा दिलाकर मनुष्य मोक्ष प्राप्ति की राह दिखातेहैं । संस्कृत साहित्य में 'गुरु' का अर्थ मनुष्य के जीवन में व्याप्त अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर करनेवाला है अर्थात् जो ज्ञान प्रदान करनेवाला है । जो मनुष्य में जीवनमूल्यों को आत्मसात कराने में सहायक होता है । कहा जाता है कि जीवन-जगत में गुरु के बिना मानव ज्ञान और अध्यात्म से वंचित है। गुरु के बिना न तो उचित ज्ञान कि प्राप्ति होती है और न ही मोक्ष की । गुरु एक सजीव शरीर मात्र ही नहीं है बल्कि एक शक्ति है । गुरु एक सकारात्मक शक्ति की संज्ञा है । अर्थात् मनुष्य के निर्माण और विध्वंश की सम्पूर्ण शक्ति । गुरु मनुष्य के जीवन का उद्धारक और एक सच्चा मार्गदर्शक है । गुरु के अभाव में मनुष्य का जीवन पूर्णतः अंधकारमय है ।[2]

'श्रीरामचरितमानस' में गुरु-तत्त्व :

शास्त्र और साहित्य में कई जगह पर गुरु का महत्त्व ईश्वर से भी अधिक बताया गया है क्योंकि गुरु के माध्यम से ही शिष्य या साधक अपने लक्ष्य तक पहुँच पाता है । साधक, शिष्य और कवि अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए गुरु का सहारा लेते हैं । हिन्दी साहित्य के भक्तिकालीन कवि तुलसीदास भी अपनी महत्वपूर्ण रचना श्री'रामचरितमानस' बालकांड के प्रारंभ में ही अपने गुरु श्रीनरहरानन्द जी का स्मरण करते हुए लिखते हैं-

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर ।।

मैं उन गुरु महाराज के चरण कमल की वंदना करता हूँ जो कृपा के समुद्र और नररूप में श्री हरि ही हैं और जिनके वचन महामोह रूपी घने अंधकार के नाश करने के लिए सूर्यकिरणों के समूह है।

बंदऊँ गुरु पद पदुम परागा ।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ।।
अमिअ मूरिमय चूरन चारु ।
समन सकल भव रुज परिवारू ।।

मैं गुरु महाराज के चरण कमल की वंदना करता हूँ। जो सुरुचि (सुंदर स्वाद) सुगंध तथा अनुराग रूपी रस से पूर्ण है। वह अमर मूल (संजीवनी जड़ी) का सुंदर चरण है, जो संपूर्ण भव रोगों के परिवार को नाश करने वाला है ।

सुकृति संभु तन बिमल बिभूति ।
मंजुल मंगल मोद प्रसूति ।।
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी ।
किएँ तिलक गुन गन बस करनी ।।

वह रज सुकृति (पूर्णवान पुरुष) रूपी शिवजी के शरीर पर सुशोभित निर्मल विभूति हैं और सुंदर कल्याण और आनंद की जननी है। भक्ति के मन रूपी सुंदर दर्पण के मैल को दूर करने वाली और तिलक करने से गुणों के समूह को वश में करने वाली है ।

श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती ।
सुमिरत दिव्य दृष्टि हियँ होती ।।
दालन मोह तम सो प्रकासु ।
बड़े भाग उर आवई जासू ।।

श्री गुरु महाराज के चरणों की ज्योति मणियों के प्रकाश के समान है जिसके स्मरण करते ही हृदय में दिव्य दृष्टि उत्पन्न हो जाती है वह प्रकाश अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करने वाला है वह जिसके हृदय में आ जाता है उसके बड़े भाग्य है ।

उधरहिं बिमल बिलोचन ही के ।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ।।
सूझहिं राम चरित मनि मानिक ।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ।।

उसके हृदय में आते ही हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और संसार रूपी रात्रि के दोष दु:ख मिट जाते हैं एवं श्री रामचरित्ररूपी मणि और माणिक्य गुप्त और प्रगति जहाँ जो जिस खान में है सब दिखायी पड़ने लगते हैं ।

जथा सुअंजन अंजी दृग साधक सिद्ध सुजान ।
कौतक देखत सैल बन भूतल भूरी निधान ।।

जैसे सिद्धांजन को नेत्रों में लगाकर साधक, सिद्ध, और सुजान पर्वतों, वनों और पृथ्वी के भीतर कौतुक से ही बहुत-सी खानें देखते हैं ।

गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन ।
नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन ।।
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन ।
बरनऊँ राम चरित भव मोचन ।।

श्री गुरु महाराज के चरणों की रज कोमल और सुंदर नयनामृत अंजन है, जो नेत्रों के दोषों का नाश करने वाला है । उसे अंजन से विवेक रूपी नेत्रों को निर्मल करके मैं (तुलसीदास) संसार रूपी बंधन से छुड़ाने वाले श्रीरामचरित्र का वर्णन करता हूँ ।[3]

सद्गुरु ग्यान बिराग जोग के ।
बिबुध बैद भव भीम रोग के ।।

उक्त चौपाई बालकांड के रामचरित की महिमा के प्रसंग से है। गोस्वामी तुलसीदास जी यहाँ मानस का महात्म्य बताते हुए कई उदहारण प्रस्तुत करते हैं जिनमें से यह एक है यथा- "श्रीरामजी का चरित्र ज्ञान, वैराग्य और योग के लिए सद्गुरु है और संसार रूपी भयंकर रोग का नाश करने के लिए देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमार के समान है ।"[3]

गुरु के बचन प्रतिति न जेहीं ।
सपनेहूँ सुगम न सुख सिद्धि तेहीं ।।

इसके अतिरिक्त उक्त चौपाई बालकांड में माता पार्वती जब शिव को पति के रूप में प्राप्त करने

को वन में तप करने जाती है तब तप पूर्ण होने पर भगवान् शिव उनके पास सप्तऋषि को भेजते है पार्वती की परीक्षा के लिए । तब वह सप्तऋषि शिव के कहने पर शिव की निन्दा पार्वती के आगे करते है । उस समय पार्वती कहती है कि जिसे अपने गुरु के वचनों पर विश्वास नहीं होता उसे स्वप्न में भी सुख और सिद्धि नहीं मिल सकती । मुझे मेरे गुरु श्रीनारद जी पर पूर्ण विश्वास है उन्होंने कहा है कि भगवान् शिव अवश्य ही तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न होकर तुम्हारा वरण करेंगे सो अब मुझे यदि शिव स्वयं भी आकर मना करे तो भी मैं मेरा प्रण नहीं छोडूंगी ।[4]

तुम्ह सब भाँती परम हितकारी ।
अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ।।
मात पिता गुरु प्रभु के बानी ।
बिनहिं बिचार करिहीं शुभ जानी ।।

उक्त चौपाई बालकांड में श्रीराम और भगवान् शिव के परस्पर संवाद का है । भगवान् शिव और भगवान् राम एक दूसरे को अपना इष्ट मानते है । जब सती दक्ष के यज्ञ में शिव निन्दा सुनकर अपने देह को भष्म कर देती है तब भगवान् शिव सती के विरह से समाधी में चले जाते है । उस समय तारकासुर नामका भयानक असुर ब्रह्मा के वरदान पाकर कि मुझे शिव पुत्र के सिवा कोई ना मार सके इससे मतवाला होकर समग्र सृष्टि पर त्राहि-त्राहि कर देता है । उस समय श्रीराम भगवान् शिव के मानस में आकर उन्हें शीघ्र ही हिमालय पुत्री पार्वती से विवाह करने की बिनती करते है । तब भगवान् शिव यह बात श्रीराम जी को कहते हैं कि- "माता-पिता, गुरु और स्वामी की बात को बिना ही बिचारे शुभ समझकर मानना चाहिए । फिर आप तो सब प्रकार से मेरे परम हितकारी हैं । हे नाथ ! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है । (यहाँ भगवान् शिव और भगवान् श्रीराम एक दूसरे के सखा, गुरु और इष्ट है यह स्पष्ट हो रहा है ।"[5]

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारी ।
बरनऊँ रघुबर बिमल जसु जो दायक फल चारी ।।

श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकांड के प्रारंभ में ही गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी ने गुरु का स्मरण किया है और कहा है- "श्रीगुरु की चरणकमलों की रज से अपने मन रूपी दर्पण को साफ़ करके मैं श्रीरघुनाथ जी के उस निर्मल यश का वर्णन करता हूँ, जो चारों फलों को (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को) देनेवाला है ।[6]

जे गुरु चरन रेनु सिर धरहीं ।
ते जनु सकल बिभव बस करहीं ।।
मोहीं सम यह अनुभयऊ न दूजे ।
सब पायऊँ निज पावनी पूजे ।।

उक्त चौपाई अयोध्याकांड के राजा दशरथ और वसिष्ठऋषि के संवाद की है । जब राजा दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को युवराज बनाने के लिए वसिष्ठऋषि के पास आज्ञा लेने जाते है तो वह गुरु का महात्म्य बताते हुए कहते है कि- "जो लोग गुरु के चरणों की रज को मस्तक पर धारण करते हैं, वह मानो समस्त ऐश्वर्य को अपने वश में कर लेते हैं । इसका अनुभव मेरे समान दुसरे किसी ने नहीं किया । आपकी पवित्र चरण रज की पूजा करके मैंने सबकुछ पा लिया।[7]

गुरु पितु मातु स्वामी हित बानी ।
सुनी मन मुदित करिअ भल जानी ।।
उचित कि अनुचित करिअ बिचारु ।
धरम जाई शिर पातक भारु ।।

उक्त चौपाई अयोध्याकांड के श्रीभरत जी और वसिष्ठ के संवाद की है । गुरु वसिष्ठ भरत जी को कहते है कि हे भरत ! इस समय आपके पिता पूण्यलोक (स्वर्ग) में है और आपके ज्येष्ठ भाई श्रीराम

वन में है । पिता के वचन के अनुसार एक पुत्र को वन और एक को अयोध्या का राज्य प्रदान किया है अतः इस समय आपका यह कर्तव्य है कि आप राज्य को संभालो । इस प्रकार के गुरु वसिष्ठ जी के वचन सुनकर भरत जी कहते है- "गुरु, पिता, माता, स्वामी और सुहद (मित्र) की वाणी सुनकर प्रसन्न मन से उसे अच्छी समझकर मानना चाहिए । उचित-अनुचित का विचार करने से धर्म जाता है और सिर पर पाप भार चड़ता है।"[8] फिर ऐसा कहकर विनम्रता से अपनी बात प्रस्तुत करते है और श्रीराम को मनवाने चित्रकूट जाते है ।

जे गुरु पद अंबुज अनुरागी ।
ते लोकहूँ बेदहूँ बडभागी ।।

उक्त चौपाई अयोध्याकांड में चित्रकूट पर सभा में भगवान् श्रीराम जी के मुख से स्रवित हुई है वे भरत जी की बड़ाई करते हुए कहते है कि- जो लोग गुरु के चरणकमलों के अनुरागी हैं, वे लोक में (लौकिक दृष्टि से) भी और वेद में (पारमार्थिक दृष्टि) भी बडभागी होते है । फिर जिसपर आप गुरु का ऐसा स्नेह है उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है ?"[9]

गुरु प्रसन्न साहिब अनुकूला ।
मिटी मलिन मन कल्पित सुला ।।

उक्त चौपाई अयोध्याकांड में चित्रकूट पर सभा में भरत जी के मुख से स्रवित हुई है वे सभी को सभा में कहते है- गुरु महाराज को प्रसन्न और स्वामी को अनुकूल जानकर मेरे मलिन मन की कल्पित पीड़ा मिट गई ।[10]

गुरु पद पंकज सेवा तीसरी भक्ति अमान ।
चौथी भगति मम गुन गन करई कपट तजि गान ।।

उक्त चौपाई अरण्यकांड में जब शबरी को भगवान् श्रीराम नवधा भक्ति प्रदान करते है तब तीसरी भक्ति गुरु के चरणों की सेवा बताया है ।[11]

सचिव बैद गुरु तिनी जो प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज धर्म तन तिनि कर होई बैगहीं नास ।।

उक्त दोहा सुंदरकांड में विभीषण और रावण के संवाद का है । विभीषण रावण को कहते हैं- मंत्री, वैद्य और गुरु यह तीन यदि (अप्रसन्नता) के भय या (लाभ) की आशा से (हित की बात न कहकर) प्रिय बोलते हैं (ठकुरसुहाती करने लगते हैं) तो (क्रमशः) राज्य, शरीर और धर्म – इन तीन का शीघ्र ही नाश हो जाता है ।[12]

"बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु" उक्त दोहा मानस उत्तरकांड के गरुड़ और कागभूसूंडी के संवाद की है गरुड़ जी कागभुसुंडी जी को कहते है कि- गुरु या वैराग्य के बिना कहीं ज्ञान नहीं हो सकता ।[13]

गुरु बिनु भवनिधि तरहीं न कोई ।
जो बिरंची संकर सम होहीं ।।

उक्त चौपाई मानस उत्तरकांड के गरुड़ और कागभुसुंडी के संवाद की है जब गरुड़ जी को मोह हुआ कि जो तीनों लोकों के स्वामी है उस श्रीराम को एक तुच्छ राक्षस ने नागपाश में कैसे बांध दिया ? यह सोचकर वे जब नारद और शिवजी के कहने पर कागभुसुंडी जी के पास आते हैं तो कागभुसुंडी जी उन्हें रामकथा सुनाते हैं। इससे उनका मोह दूर हो जाता है और कहते हैं कि प्रभु की माया किसी को भी मोह में डाल देती है । गुरु के बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्माजी और शंकर जी समान ही क्यों न हो । मुझे सन्देह रूपी सर्प ने डस लिया था और साँप के डसने पर जैसे विष चढ़ने से लहरें आती हैं वैसे ही बहुत-सी-कुतर्क रूपी दुःख देने वाली लहरे आ रही थीं । आपके स्वरूपरूपी गारुड़ी साँप का विष उतारने वाले के द्वारा भक्तों को सुख देने वाले श्रीरघुनाथ जी ने मुझे जिला लिया आपकी कृपा से मेरा मोहनाश हो गया और मैंने श्रीराम जी का अनुपम रहस्य जाना ।[14]

सदगुरु बैद बचन बिस्वासा ।
संजम यह न बिषय के आसा ।।

उक्त चौपाई मानस उत्तरकांड के गरुड़ ओर कागभूसूंडी के संवाद की है । जब गरुड़ जी कागभुसुंडी जी को मानस रोग का वर्णन करते है तब यह बात गरुड़ जी ने कही है कि- "सद्गुरु रूपी वैद्य के वचन में विस्वास हो, विषयों की आशा न करे, यही संयम (परहेज) हो तो मनुष्य के सारे रोग मिट सकते है।"[15]

हरई शिष्य धन सोक न हरई ।
सो गुरु घोर नरक महु परई ।।

उक्त चौपाई मानस उत्तरकांड के गरुड़ ओर कागभुसुंडी के संवाद की है । गरुड़ जी जब कागभुसुंडी को कलियुग का वर्णन सुनाते है तब गरुड़ जी ने कहा कि- "जो गुरु शिष्य का धन हरण करता है, पर शोक नहीं हरण करता वह घोर नरक में पड़ता है।"[16]

जे सठ गुरु सन इरिषा करिहीं ।
रौरव नरक कोटि जुग परहीं ।।

उक्त चौपाई मानस उत्तरकांड के गरुड़ ओर कागभुसुंडी के संवाद की है । कागभुसुंडी ने अपने गुरू लोमसऋषि की बात न मानकर उनसे तर्क वितर्क किया इससे गुरु अवज्ञा का उसको दोष लगा । फिर एक बार उज्जैन के महाकाल मंदिर में कागभुसुंडी अपने अगले जन्म में भगवान् शिव का जप कर रहे थे उस समय उनके गुरु वहाँ आए और कागभुसुंडी ने उठकर उनको प्रणाम भी नहीं किया। तब गुरु को कोई क्रोध नहीं आया पर उसके ऐसे व्यव्हार से उद्विग्न होकर भगवान् शिव महाकालेश्वर ज्योतिर्लिंग से प्रकट हुए और बोले "हे मुर्ख ! तूने गुरु का अपमान किया है और अधम पक्षी की तरह उनके साथ व्यवहार किया है अतः तू काग बन जा और दस हजार जन्म धारण कर । पश्चात् परम दयालु गुरु लोमस जी ने अपने शिष्य को ऐसा दारुण अभिशाप मिला यह सुनकर व्याकुल हो गए और वहीं पर भगवान् शिव की 'रुद्राष्टक' नामक स्तुति की । इससे प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने उनसे वरदान माँगने को कहा फल स्वरूप उन्होंने अपने शिष्य पर दया करने को कहा । भगवान् शिव बोले मैंने जो कह दिया वह तो होगा ही, परन्तु उसका दंड थोडा कम हो सकता है । इसको दस हजार के बदले अब एक हजार ही जन्म लेने होंगे और जन्म-मरण का जो असह्य दुःख होता है वह नहीं भुगतना होगा तथा इसका ज्ञान नष्ट नहीं होगा । उसके पश्चात इसको मेरी भक्ति प्राप्त होगी और वहाँ से इनको श्रीराम जी के चरणों में प्रीती होगी । तब से कागभुसुंडी उत्तर दिशामें निलगिरी पर्वत पर भगवान् श्रीराम जी की कथा गाते रहते हैं और कई पक्षियाँ उनको श्रवण करने आते हैं । इसलिए यहाँ पर कागभुसुंडी गरुड़ जी को कहते हैं- "जो मूर्ख गुरु से इर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़े रहते हैं।"[17] "गुरु पद प्रीति निति रत जेई" उक्त चौपाई मानस उत्तरकांड के गरुड़ ओर कागभूसूंडी के संवाद की है । गरुड़ जी कागभुसुंडी जी को कहते है कि- जिनकी गुरु के चरणों में प्रीति है उनको यह रामकथा बहुत ही सुख देनेवाली है ।[18]

*** श्रीरामचरितमानस में गुरु के सात प्रकार :**

(१) सूचक गुरु : सूचक गुरु केवल शब्द और अक्षरों के आधार पर लौकिक ग्रंथों का आश्रय करता है । रामचरितमानस में 'कालनेमि' सूचकगुरुहैं ।

(२) वाचक गुरु : वाचक गुरु धर्म क्या है ? अधर्म क्या है ? हमारी भूमिका क्या है ? यह बताते हैं । रामचरितमानस में वसिष्ठ इस प्रकार के गुरुहैं (एक तरफ उसने सद्गुरु की भूमिका भी निभाई है) ।

(३) बोधक गुरु : जो मंत्र प्रदान करते हैं । मंत्र का बोध कराते हैं । 'तुम्हरो मंत्र बिभीषन माना' हनुमान जी ऐसे गुरुहैं उसका नाम सद्गुरु में भी बताया गया है ।

(४) निषिद्ध गुरु : इस प्रकार के गुरु वशीकरण, मोहन, उन्चाटन तंत्र आदि का प्रयोग करते हैं। ऐसे गुरु के पास नहीं जाना चाहिए ।

(५) विहित गुरु : विहित गुरु नर रूप हरि हैं (जैसे तुलसीदास जी के गुरु नरहरानंद जी) जो शिष्य को वैराग्य की और प्रेरित करता है । त्याग का पंथ दिखाता है ।

(६) कार्णख्यगुरु : कार्णख्य गुरु वेद के महावाक्य को पढ़ातेहैं । याचक बनाते हैं । 'सब में वही समाया' ऐसा भाव सिखाते हैं । यह निर्गुण परंपरा पर आधारित है परन्तु जब तक सद्गुरु को नहीं जान पाते तब तक निर्गुण तक कैसे पहुँच सकते हैं ? रामचरितमानस में ऐसे गुरु कागभुसुंडी के गुरू लोमस जी हैं ।

(७) परम गुरु या सद्गुरु : जोसभी संदेह को अपनी दृष्टि से, अपने संग से, अपनी वाणी से, चेष्टाओं से, जीवन चर्या से नष्ट कर देते हैं उनको 'परम गुरु या सद्गुरु' कहते हैं । रामचरितमानस में ऐसे गुरु श्रीभरत जी और श्रीशंकर जी हैं ।[19]

*** गुरु के अन्य प्रकार :**

(१) जगत गुरु : जिसके चिंतन, विचार, चेतना सभी मानव जात, जीव जगत के कल्याण के लिए होता है उनको 'जगतगुरु' कहे जाते हैं ।

(२) सद्गुरु : जो अपने के साथ अपने शिष्य को मंत्र अथवा माला पहनाकर उनका कल्याण करे ऐसे गुरु को 'सद्गुरु' कहते हैं ।

(३) योग-योगेश्वर गुरु : योग-योगेश्वर जो योगियों के भी योगी है । जिसको योग की शिक्षा सिद्ध होती है या अन्य को योग में सहायक होते हैं । जो अष्टांग आदि योग द्वारा कुशल होते हैं वह 'योग-योगेश्वर गुरु' कहे जाते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार के गुरुहैं ।

(४) त्रिभुवन गुरु : समस्त सृष्टि तथा समस्त ब्रह्माण्ड के गुरु, सभी का हित करनेवाले, सभी का कल्याण करनेवाले, जिसके अंदर से सभी प्रकार का ज्ञान, सभी प्रकार की विद्या प्रकट हुई हो, जो समस्त ज्ञान के स्रोत हैं वह भगवान् शिव त्रिभुवन गुरुहैं ।[20]

तुम्ह त्रिभुवन गुरू बेद बखाना ।
आन जीव पाँवर का जाना ।।

ऐसे भगवान् शिव के परशुराम, शनिदेव आदि शिष्य बने हैं ।

निष्कर्ष :

हमारे जीवन में गुरु की परम आवश्यकता होती है । यहाँ तक कि भगवान् राम और भगवान् कृष्ण ने भी गुरु के सांनिध्य में रहकर विद्या प्राप्त की थी । भगवान् राम ने तो स्वयं गुरु वशिष्ठ के चरणों में बैठकर परम ज्ञान प्राप्त किया था इसके फल स्वरूप हमें 'योगवाशिष्ठ्य रामायण' नामका ग्रन्थ प्राप्त हुआ । कृष्ण ने महाकाल की पवित्र नगरी क्षिप्रा नदी के किनारे उज्जैन में गुरु सांदीपनि से ६४ दिनों में ६४ प्रकार की विद्या ग्रहण की थी । राम और कृष्ण की गुरु की सेवा परम उत्कृष्ट थी । उन्होंने विद्या प्राप्ति के साथ गुरु आश्रम की शुश्रूषा, गौसेवा आदि में भी अपना जीवन समर्पित किया था । श्रीमद्भागवत ग्रन्थ में भी दत्तात्रेय के २४ गुरु की कथा भी मिलती है । ऐसे अनेक प्रकार के शिष्य और गुरुओं की गाथा हमें प्राप्त होती हैं । फल स्वरूप इतना ही कहना उचित होगा कि हमारे भारतीय समाज में गुरु परम्परा और निष्ठा परम आदरणीय रही है ।

सन्दर्भ सूची :

1. वर्मा, रामचन्द्र, 'हिन्दी शब्द सागर' कोश, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, वि.सं. 2008, पृ. 325

2. डॉ.ममता, रामचरितमानस में वर्णित गुरु महिमा, संवेदना पत्रिका, वर्ष2023Vol.V Issue-2, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, पृ.89
3. श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासविरचितश्रीरामचरितमानस, (बालकांड–गुरु वंदना) टीकाकार : हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस गोरखपुर, वि.सं.2078, 326वाँ पुनर्मुद्रण, पृ. 19, 20
4. वही (बालकांड), पृ. 54
5. वही (बालकांड), पृ. 93
6. वही (अयोध्याकांड),(दोहा-1), पृ. 344
7. वही (अयोध्याकांड), पृ. 346
8. वही (अयोध्याकांड), पृ. 490
9. वही (अयोध्याकांड), पृ. 560
10. वही (अयोध्याकांड), पृ. 566
11. वही (अरण्यकांड), पृ. 667
12. वही (सुंदरकांड),(दोहा-37), पृ. 748
13. वही (उत्तरकांड),(दोहा-89-ख), पृ. 991
14. वही (उत्तरकांड), पृ. 995
15. वही (उत्तरकांड), पृ. 1036
16. वही (उत्तरकांड), पृ. 1001
17. वही (उत्तरकांड), पृ. 1010
18. वही (उत्तरकांड), पृ. 1043
19. हरियाणी, श्री मोरारीबापू, अमृत रामायण (गुजराती ग्रन्थ), प्रवीण प्रकाशन प्रा.लि.राजकोट
20. श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासविरचितश्रीरामचरितमानस, (बालकांड–गुरु वंदना) टीकाकार : हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस गोरखपुर, वि.सं. 2078, 326वाँ पुनर्मुद्रण, पृ. 124